International Journal of Applied Research 2019; 5(9): 383-384

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2019; 5(9): 383-384
www.allresearchjournal.com
Received: 10-07-2019
Accepted: 16-08-2019

डॉ. रामकृष्ण
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, नेशनल पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. रामकृष्ण
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग नेशनल पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

बाबू गुलाबराय के साहित्य में युगबोध

डॉ. रामकृष्ण

प्रस्तावना

कोई कवि या लेखक हमारे लिए तब और महत्वपूर्ण हो जाता है, जब उसकी दृष्टि युग पर होती है, समय पर होती है और युग को एक नई दृष्टि देने की ललक उसके साहित्य में दृष्टिगोचर होती है। बाबू गुलाबराय एक ऐसे ही साहित्यकार हैं। बाबू जी के साहित्य के रूप हैं। कहीं वे एक सफल निबंधकार के रूप में दिखाई देते हैं, कहीं सशक्त इतिहास लेखक के रूप में दिखाई देते हैं, तो कहीं हम उन्हें एक सफल सम्पादक के रूप में देखते हैं। तात्पर्य है बाबू गुलाबराय का साहित्यिक क्षितिज अत्यन्त व्यापक है। आज उनके साहित्य पर गहन अनुशीलन, मनन एवं चिंतन करने की आवश्यकता है।

लेखक की प्रबल अनुभूति तब एक सबल अभिव्यक्ति बन जाती है , जब वह जीवन की जटिल बातों को सरलता के साथ कहने की कला में प्रवीण हो जाता है। जटिल तथ्यों को सरलता के साथ व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है। बाबू गुलाबराय इस कला में प्रवीण हैं।

उनकी निबंध रचनाएँ 'ठलुआ क्लब', 'फिर निराशा क्यों', 'मेरी असफलताएँ' इस तथ्य का स्पष्ट उद्घोष करती हैं। इस आशय से सम्बन्धित उनके द्वारा लिखित 'मेरी दैनिकी का एक पृष्ठ' की कुछ पँक्तियाँ द्रष्टव्य हैं:

''खैर आजकल उस (भैंस) का दूध कम हो जाने पर भी और अपने मित्रों को छाछ भी नहीं पिला सकने की विवशता की झूंझल के होते हुए भी (सुरराज इन्द्र की तरह मुझे भी मट्ठा दुर्लभ हो जाता हे –तक्र शक्रस्य दुर्लभम्) उसके लिए भुस लाना अनिवार्य हो जाता हैं कहां साधारणीकरण और अभिव्यंजनावाद की चर्चा और कहां भुस का भाव। भुस खरीदार मुझे भी गधे के पीछे ऐसे ही चलना पड़ता है, जैसे बहुत से लोग अक्ल के पीछे लाठी लेकर चलते हैं। कभी–कभी गधे के साथ कदम मिलाकर रखना कठिन हो जाता है। लेकिन मुझे गधे के पीछे चलने में उतना ही आनन्द आता है जितना कि पलायनवादी को जीवन से भागने में।''(1)

उक्त कथन पर विचार करने से यह स्पष्ठ होता है कि जीवन की गहन गम्भीर समस्याओं का भी व्यंग्य का रूप देकर उदान्तीकृत किया जा सकता है। एक ओर जन–जीवन में व्याप्त सहज लोकोक्ति 'अक्ल के पीछे लाठी लेकर चलना' प्रयुक्त हुई है, तो दूसरी ओर संस्कृत की महत्वपूर्ण उक्ति तक्रं शक्रस्य दुर्लभम्' (मट्ठा इन्द्र के लिए भी दुर्लभ है) जैसी लोकोक्ति का प्रयोग करके वे जीवन की गहन एवं गम्भीर वस्तुस्थिति पर प्रकाश डालते हैं। पलायनवाद उन्हें पसन्द नहीं है। वे जीवन के प्रति अनुरक्ति रखने वाले साहित्यकार हैं।

बाबू गुलाबराय को सर्वाधिक सफलता निबन्ध लेखन के क्षेत्र में प्राप्त हुई है। उनके निबन्धों की शैली इतना व्यक्तिव्यंक है कि उन्हें निस्संकोच ललित निबंधों की श्रेणी में भी रखा जा सकता है। हास्य और व्यंग्य उनके निबन्धों का स्थायी भाव है, किन्तु प्रत्येक निबन्ध शिक्षाप्रद है और युगबोध के दृष्टिकोण से बार–बार पठनीय लगता है। बाबू जी के निबन्धों का विश्लेषण करते हुए प्रसिद्ध विद्वान डॉ0 शिवकुमार शर्मा ने लिखा है:

''बाबू गुलाबराय ने साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक, संस्मरणात्मक आदि सभी प्रकार के निबन्ध लिखे हैं। इनके निबन्धों मे वैयक्तिकता, अनुभूति की गहनता और शैली की सुबोधता सभी गुण मिलते हैं। आपके 'मेरी असफलताएँ' और 'फिर निराश क्यों' आदि निबन्ध काफी लोकप्रिय हुए हैं। इनके अतिरिक्त आपके निबन्ध संग्रह हैं:

'अध्ययन और आस्वाद' 'मेरे निबन्ध' 'कुछ गहरे कुछ उथले', 'जीवन रश्मियाँ'। इनके निबन्ध समीक्षात्मक, विचारात्मक, ललित व्यंग्यात्मक तथा संस्मरणात्मक सभी प्रकार के हैं। 'मेरी प्रवास भीरूता' और 'मेरा चौदहवाँ जन्मदिवस' संस्मरणात्मक निबन्ध हैं। 'पृथ्वी पर कल्पवृक्ष', 'जय उलूकराज' तथा 'संपादक राज' हास्य व्यंग्यात्मक निबन्ध हैं। आपकी भाषा शैली सदा विषयानुकूल रही है।''(2)

निबन्ध को बहुधा नीरस विधा माना जाता है। आ0 शुक्ल ने स्पष्ट कहा कि 'गद्य की कसौटी निबन्ध' है, किन्तु वे भी अपने निबन्धों को उपयुक्त सरसता और रोचकता प्रदान करते हुए उसे युगबोध से जोड़ते हैं। आ0 शुक्ल के समान की गुलाबराय निबन्ध जैसी नीरस विधा को अत्यन्त सरस, रोचक, रोमांचक एवं हृदयग्राही बनाकर प्रस्तुत करते हैं।

'ठलुआ क्लब' के अन्तर्गत सन्निहित व्यंग्य उनके युगबोध का अनुपम उदाहरण है। इस निबन्ध के अन्तर्गत ग्राहक पटाने की कला, एजेन्ट कैसा हो? विज्ञापन की कला, वस्तुओं का सरलतापूर्ण विक्रय जैसे अनेक विषयों पर अत्यन्त चुटीले अंदाज में अपनी लेखिनी चलाई है और समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार पर प्रहार किया है।

कहीं–कहीं बाबू गुलाबराय की निबंध शैली आ0 शुक्ल की शैली से मेल खाती है। आ0 शुक्ल द्वारा 'लोभ और प्रीति' नामक निबंध के उक्त उद्‌गार बाबू गुलाबराय के उद्‌गारों के पूर्व संस्करण से प्रतीत होते हैं। 'लोभ और प्रीति' निबन्ध का उक्त अंश दृष्टव्य है:

''लोभियों का दमन योगियों के दमन से किसी प्रकार कम नहीं होता। लोभ के बल से वे काम और क्रोध को जीतते हैं, सुख की वासना का त्याग करते हैं, मान–अपमान में समान भाव रखते हैं.... .....लोभियों,

तुम्हारा अक्रोध, तुम्हारा इन्द्रिय निग्रह, तुम्हारी मान अपमान–समता, तुम्हारा तप अनुकरणीय है:

तुम्हारी निष्ठुरता, तुम्हारी निर्लज्जता, तुम्हारा अविवेक, तुम्हारा अन्याय विगर्हणीय है। तुम धन्य हो, तुम्हें धिक्कार है।''(3)

इसी प्रकार बाबू गुलाबराय की युग दृष्टि पर विचार करते हुए उनका 'भारतीय संस्कृति' नामक निबन्ध देखा जा सकता है। इसमें वे व्यंग्य विधा से ऊपर उठकर संस्कृति के महत्व को रूपायित करते है। 'संस्कृति' का विश्लेषण करते हुए वे 'भारतीय संस्कृति' नामक निबंध में लिखते हैं:

''संस्कृति' शब्द का सम्बन्ध संस्कार से है जिसका अर्थ है संशोधन करना, उत्तम बनाना, परिष्कार करना। अँग्रेजी शब्द 'कल्चर' में वही धातु है जो 'एग्रीकल्चर' में है। इसका भी अर्थ 'पैदा करना, सुधारना' है। संस्कार व्यक्ति के भी होते हैं और जाति के भी। जातीय संस्कारों को ही संस्कृति कहते है। संस्कृति एक समूहवाचक शब्द है। जलवायु के अनुकूल रहन–सहन विधियाँ और विचार परम्पराएँ जाति के लोगों में दृढ़मूल हो जाने से जाति के संस्कार बन जाते हैं। इनको प्रत्येक व्यक्ति अपनी निजी प्रकृति के अनुकूल न्यूनाधिक मात्रा में पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त करता है। ये संस्कार व्यक्ति के घरेलू जीवन तथा सामाजिक जीवन में परिलक्षित होते हैं।''(4)

बाबू गुलाबराय के निबन्धों में युगबोध की एक विलक्षण दृष्टि है। 'भारतीय संस्कृति' नामक निबन्ध के अन्तर्गत के शास्त्रबदु मान्यताओं का सर्वत्र वे इस तत्य को दृढता के साथ प्रतिपादित करते हैं कि समर्थन करते हैं। भारतीय संस्कृति के निर्धारण में मनुस्मृति, श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, वैदिक साहित्य की अतुल्य भूमिका है। (5)

भारतीय संस्कृति के साथ–साथ आ0 रामचन्द्र शुक्ल के बाद यदि काव्यशास्त्रीय विश्लेषण में किसी आचार्य का प्रमुखता से नाम लिया जा सकता है, तो वे बाबू गुलाबराय ही हैं। उन्होंने अपने निबन्धों रस के महत्व को व्यापक रूप में स्वीकार किया है। अपने 'सिद्धान्त और अध्ययन' में वे रस को 'काव्य की आत्मा' स्वीकार करते है।

वे लिखते हैं– ''रस में कर्ता (कवि) कृति (काव्य) और भोक्ता (पाठक) तीनों को ही समान महत्व मिलता है। उसमें प्रभाव है, गति है और जीवन की तरलता है। वह कवि के हिमगिरि से विशाल, रत्नाकर से विस्तृत और गम्भीर हृदय–स्रोत से निससृत होकर कृति रूप में प्रवाहित होता हुआ पाठक के दृय को अप्लावित करता है। इसी से वह रस (जल के अर्थ में) अपना नाम सार्थक करता है। आस्वाद्य होने के कारण वह रसना के रस की भी समान धर्मिता समपादित करने में समर्थ रहा है। म्लान और प्रियमााण हृदयों को संजीवनी शक्ति प्रदान कर आयुर्वेदिक रस के गुणों को अपनाता है। काव्य का सार होने के कारण उसमें फलों के रस की भी अभिव्यक्ति है। रस अर्थात् आनन्द उसका निजी रू‍प है। वह रमणीयता का चरम लक्ष्य है और अर्थ की अर्थस्वयपा ध्वनि का भी विश्राम स्थल है। इसलिए वह परमार्थ है, स्वयं प्रकाश्य, चिन्मय, अखण्ड, ब्रहमानन्द–सहोदर है– 'रसो वै सः '। ''(6)

तथ्यपरक, विवेचनात्मक एवं तर्कपूर्ण शैली की दृष्टि से बाबू गुलाबराय के निबन्ध अत्यन्त प्रभावोत्पादक हैं। उनके निबन्धों के अन्तर्गत उनकी व्यापक दृष्टि एवं गहन सोंच एक साथ परिलिक्षित होती है। उनके निबन्धों के अन्तर्गत् भारतीय परिवेश का रहरन–सहन खान–पान, आचार–विचार स्पष्टतः परिलक्षित होता है। उन्होंने अपनी तर्कशक्ति एवे तलनात्क चिन्तन दृष्टि का परिचय देते 'भारतीय संस्कृति' नामक निबन्ध में लिखते हैं:

''हमारी रहन–सहन, पोशाक आदि बातें जातीय परिस्थिति, देश के वातावरण और देश की भावनाओं से सम्बन्धित हैं। जमीन पर बैठना, हाथ से खाना, नहाकर खाना, लम्बे–ढीलें कपड़े पहनना, बेसिले कपड़ों को अधिक शुद्ध मानना, ये सब चीजे देश की आवश्यकताओं एवं आदर्शो के अनुकूल हैं। गरम देश में पृथवी का स्पर्श बुरा नही लगता। इसीलिए यहाँ जूतों काइतनामान नहींहै, जितना कि विलायत में। यहाँ हाथ से खाने का चलन इसलिए हुआ कि यहाँ हर समय हाथ धोए जा सकते है। यहाँ नहाने के लिए जल की कमीं नहीं और नहाने की आवश्यकता भी अधिक होती है, इसलिए महान धर्म का अंग हो गया है। ''(7)

उक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि बाबू गुलाबराय एक युगदृष्टा निबन्धकार हैं। कहीं वे हास्य एवं व्यंग्य शैली का परिचय देते हुए अपने युगीन वातावरण पर कटाक्ष करते हैं, तो कहीं गम्भीर एवं चिन्तनप्रधान शैली का प्रयोग करते हुए अपने युगीन सत्य को उद्‌घाटित करते हैं। स्पष्ट है कि वे एक युग दृष्टा साहित्यकार हैं। वर्तमान युग में उनके साहित्य के गहन अध्ययन, अनुशीलन, विश्लेषण एवं विवेचन की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास– सं0 डॉ0 नगेन्द्र एवं डॉ0 हरदयाल, प्रकाशकः नेशनल पब्लिशिंग कम्पनी –इन्दिरापुरम्, संस्करण –2009, पृष्ठ 571
2. हिन्दी साहित्यः युग और प्रवृत्तियाँ– डॉ0 शिवकुमार शर्मा, मिनर्वा पब्लिकेशन– जोधपुर प्रथम संस्करण–2015, पृष्ठ 663–664
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास–सं0 डॉ0 नगेन्द्र एवं डॉ0 हरदयाल, प्रकाशकः नेशनल पब्लिशिंग कम्पनी इन्दिरापुरम्, संस्करण 2009, पृष्ठ 570
4. भारतीय संस्कृति–गुलाबराय–पृष्ठ 06
5. भारतीय संस्कृति पृष्ठ 7, 8
6. अध्ययन और आस्वाद – पृष्ठ 48
7. 'भारतीय संस्कृति' – गुलाबराय, पृष्ठ– 7